

## इक्कीसवीं सदी के पूर्व और उत्तर में ओड़िया और हिंदी सिनेमा का विकासात्मक अध्ययन

डॉ. ममता खाण्डल

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग  
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय  
किशनगढ़, अजमेर  
mamta\_khandal@curaj.ac.in

**सिनेमा** एक प्रकार का स्फूर्त गणित है, जो हमें समीकरण प्रदान करता है। पर यह समीकरण निराकार अंकों, त्रिभुजों, वृत्तों आदि का नहीं, वरन् वह मानव-भावों और रूपों का समीकरण है। मनुष्य अपने जीवन में वस्तुओं को अपने सही आकार में देखने का आदी होता है, और सिनेमा व्यक्ति को वस्तुओं, आकारों और जीवन को बहुत बड़ा करके दिखाता है। लार्जर देन लाइफ़ अर्थात् आर्कटाइप।

मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं – “आर्कटाइप और कुछ भी हो, अति सामान्य कभी नहीं होता। आखिर ‘लार्जर देन लाइफ़’ आपके जीवन में, रोजमर्रा में देखने को कैसे मिल सकता है। हाँ, आप यह ज़रूर कह सकते हैं कि दर्शकों का बहुत जाना-पहचाना होता है। तो यहाँ मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहूँगा कि उस जाने-पहचाने आर्कटाइप को लेखक अपनी लेखनी से और अभिनेता अपने अभिनय से बराबर कोई नई भंगिमा, कोई नया अर्थ दे पाते हैं।” (जोशी, मनोहर श्याम – पटकथा लेखन: एक परिचय, राजकमल प्रकाशन 2000)

सिनेमा में इस तरह के व्यक्ति या पात्र मिथक या इतिहास से ही लिए जाते हैं। दर्शक इस तरह के चरित्रों को इसलिए पसंद करता है, क्योंकि वे सामान्य होकर भी विशिष्ट कार्य करते हैं और विशिष्ट कार्य करके भी सामान्य मनुष्यों की भाँति सुखी और दुखी होते हैं। इसलिए सिनेमा जब भारत में आया उसकी कहानी भी हमारे जन-मानस में बसे मिथकों, ऐतिहासिक पात्रों को आधार मानकर बनी, मसलन ‘राजा हरिश्चन्द्र’(1913), लंका दहन (1917), सीता स्वयंवर (1918), सैरन्धी (1920)। ओड़िया भाषा की पहली फिल्म ‘सीता विवाह’(1934) में बनी। अपने आरंभिक दौर में ओड़िया सिनेमा की निर्माण की गति काफ़ी धीमी थी। ‘सीता विवाह’ के उपरान्त ‘ललिता’ बनी और इस तरह 1951 तक ओड़िया सिनेमा की प्रगति के नाम पर उसके झोले में मात्र दो फ़िल्में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा पाई थीं।

प्रारंभिक हिंदी सिनेमा भी अपने पौराणिक मिथकों, इतिहास और संस्कृति के प्रभावों में ही था इसलिए अधिकतर फिल्मों भी इन्हीं विषयों पर आधारित थीं। 'देवी-देवयानी' (1931ई.), 'राधा- रानी' (1932), 'अयोध्या का राज' (1932), 'माया- मछेन्द्र' (1935), 'अमृत-मंथन' (1934), 'श्याम-सुन्दर' (1935), 'राजरानी मीरा' (1933), 'वामन अवतार' (1934) आदि।

साल 1936 से 1942 के आस-पास हिंदी सिनेमा के विकास में नए आयाम जुड़ते हैं और यह समय हिंदी सिनेमा को न सिर्फ कलात्मकता का नया अध्याय प्रदान करता है, बल्कि वैचारिक गंभीरता की दृष्टि से भी पुष्ट करता है। इसी दौर में सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ होता है और विश्व के अन्य उपनिवेशों के साथ-साथ भारत पर भी इसका असर दिखाई देने लगता है। इस समय की महत्वपूर्ण फिल्मों में हैं -वी. शांताराम की 'पड़ोसी' (1941 ई.), एस. मुखर्जी की 'किस्मत' (1943 ई.), महबूब खान की 'रोटी' (1942)।

सन् 1947 में भारत स्वाधीन हुआ लेकिन इस स्वाधीनता ने विभाजन साथ में दिया, जिसके सांप्रदायिक दंगों में हजारों लोग मारे गए। सन् 1947 से 1955 ई. तक का समय हिंदी सिनेमा के इतिहास में कलात्मकता और भव्यता के लिए जाना जाता है। इस समय की महत्वपूर्ण फिल्मों हैं - 'सिन्दूर' (1947ई.), 'आनन्द मठ' (1952 ई.), 'जागृति' (1954 ई.), 'दो बीघा जमीन' (1956 ई.), 'देवदास' (1955 ई.)।

सन् 1951 ई. के आस-पास ओड़िया सिनेमा जागने के लिए आँखें मल रहा था, तभी सन् 1951 ई. में अंग्रेजी नाम के साथ ओड़िया फिल्म आयी, जिसका नाम था 'रोल्स टू एईट' (Rolls to Eight)। यह एक प्रेम कथा थी। इस के बाद ओड़िया सिनेमा ने लगभग गति पकड़ी और कई फिल्मों का निर्माण हुआ। 'आमरी गाँ झिय', 'केदार गौरी' (1954), 'सप्त सैया' और 'भाई-भाई' (1956), 'माँ' (1959) आदि इनमें प्रमुख हैं।

पी. के. सेनगुप्ता के निर्देशन में 1960 के समय में कुछ ऐसी फिल्मों बनी जिन्हें ओड़िया सिनेमा में 'मील का पत्थर' कहा जाता है - 'श्री लोकनाथ', 'नुआ बहु', 'सूर्यमुखी' और 'अरुंधती'। 'श्री लोकनाथ' को 1960 का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त है। इसी दशक में कुछ और बेहतरीन फिल्मों का निर्माण हुआ, नितार्ई पलित की 'मल्ला जन्ह' (1965), इसमें माता- पिता तंग आर्थिक स्थिति के कारन अपनी बेटी 'सती' का विवाह मजबूरन असुंदर बूढ़े धनी व्यक्ति के साथ कर देते हैं। मृणाल सेन की 'माटी र मनीषो', कान्हू चरण की 'का' (1965) बांझ औरत की कहानी है जो बच्चे की कामना से व्यथित अपने पति को दूसरी औरत से विवाह करने के लिए बाध्य करती है, और अभिनेत्री, बासंती पटनायक की 'अमडा बाटो' (1964) और कुंता कुमारी आचार्य की 'अदीना मेघ' (1970) इस दौर की महत्वपूर्ण फिल्मों हैं।

मई 1964 में जवाहरलाल नेहरू के अवसान के बाद भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में कई अनपेक्षित मोड़ आये। लाल बहादुर शास्त्री भारत के नए प्रधानमंत्री बने। वे भारत को गांधीवादी आदर्शों पर ले जाने का सपना देख रहे थे, उससे पहले ही दिसम्बर 1965 में भारत- पाकिस्तान युद्ध शुरू हो गया और जनवरी 1966 में शास्त्री जी का ताशकंद में निधन हो गया। तत्पश्चात इंदिरा गाँधी प्रधानमंत्री बनीं। 1966, 1967 और 1968 में देश में भयंकर सूखा और अकाल पड़ा। 1967 में ही बंगाल में नक्सलवादी आंदोलन

शुरू हुआ। यह आंदोलन पढ़े-लिखे युवाओं में खासतौर से कलकत्ता के आस-पास फैला। वास्तव में नेहरू युग के बाद की राजनीति को मोहभंग की राजनीति के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। 1965 के बाद भारत की राजनीति में प्रतिरोध का स्वर प्रबल हुआ। 1974 में पूरे देश में आपातकाल की घोषणा हुई। इस अवधि में घटित परिस्थितियों को जनमानस ने गहराई से महसूस किया। दमन, शोषण, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता और हिंसा के अलग-अलग रूप सामने आये। नया सिनेमा में भ्रष्ट सत्ता के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर सुनाई पड़ने लगा। मृणाल सेन की 'भुवन शोम'(1969) नया सिनेमा का औपचारिक आगाज थी। इस दौर की कुछ प्रमुख फ़िल्में हैं- 'सारा आकाश' (1969), 'उसकी रोटी' (1970), 'निशांत' (1975), 'मंथन' (1976), 'भूमिका' (1977), 'जूनून' (1970), 'त्यागपत्र' (1979), 'गरम हवा' (1973), 'आक्रोश' (1980), 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है' (1980), 'दास्तान' (1978), 'स्पर्श' (1979) आदि हैं।

इस समय भारतीय समाज में अनेक तरह के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विमर्श की एक मुकम्मल जमीन तैयार हो रही थी। इसी कालखंड में उत्तर भारत के ग्रामीण इलाकों में सवर्ण व पिछड़ी जातियों के संघर्ष की धार पैनी हुई। इस धार को पैनापन प्रदान करने वाली फ़िल्में थीं - 'मृगया' (1976), 'मंडी' (1983), 'पार' (1984), 'दामुल' (1985), आदि।

इसके अलावा हिंदी सिनेमा ने सामाजिक दायित्व को समझते हुए सामाजिक समस्याओं को भी गंभीरता से उठाया है। इन फ़िल्मों में - 'अर्धसत्य' (1985), 'आघात' (1988), 'दृष्टि' (1990), 'परमा' (1985), 'सती' (1989), 'दूरत्व' (1978), 'बाघ बहादुर' (1986), 'मिर्च मसाला' (1987), 'रूदाली' (1992), 'सलाम बाम्बे' (1988), 'पेस्टन जी' (1987)। इस समय के सिनेमा ने अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की, क्योंकि यह सिनेमा 'इंटेलेक्चुअल' काफ़ी था। 1990 के बाद हिंदी सिनेमा ने एक करवट और ली और यथार्थवादीवादी दृष्टिकोण के साथ-साथ इसमें व्यवसायिक फार्मूले को भी साथ में उपयोग किया जाने लगा। इस प्रकार के सिनेमा के अंतर्गत आती हैं - प्रकाश झा की 'मृत्यु दंड' (1998), 'गंगाजल' (2003), राजकुमार संतोषी की 'दामिनी' (1994), मधुर भंडारकर की 'चांदनी बार' (2001), 'पेज-3' (2003), 'कापॉरेट' (2006), रामगोपाल वर्मा की 'कंपनी' (2001), 'डी' (2005), महेश भट्ट की जख्म' (1999), 'तमन्ना' आदि। इस प्रकार के सिनेमा के पीछे तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक कारण थे। बीसवीं शताब्दी का आखरी दशक अपने साथ उदारीकरण की लहर लेकर आया था और इसका प्रभाव समाज के हर तबके और अंग पर पड़ा था।

हिंदी सिनेमा ने 1960 के बाद से जो गति पकड़ी उसमें सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक आर्थिक, देश-विदेश की न केवल सभी समस्याओं बल्कि उसके दूरगामी परिणाम और उन समस्याओं के समाधान को तलाशती नजर आती है और इसमें वह उतरोत्तर आगे गति प्राप्त करता हुआ नजर आता है। जबकि ओड़िया सिनेमा अपने आयाम में क्षेत्रीय ही रहा। यद्यपि ओड़िया सिनेमा में 1960 के आस-पास कुछ मील का पत्थर साबित करती हुई फ़िल्मों का निर्माण होने लगा था, लेकिन गति इसने 1975 में 'ममता' फिल्म के प्रकाशन से ली। पहली रंगीन फिल्म नगेनरॉय की 'गप हेले भी सत्त' 1976 में आयी। इधर ओड़िया सिनेमा पर बंगला सिनेमा का प्रभाव पड़ने से सामाजिक-आर्थिक चिंतन फिल्मों में दृश्यगत होने लगा था। 'भाई-

भाउज'(1967) में क्रूर जमींदार के द्वारा किसानों का शोषण दिखाया गया है। बिलाप रॉय चौधरी की 'चिलिका तीरे' (1977), अनपढ़ मझुआरों की करुण गाथा है जो व्यवसायिकों द्वारा लगातार अत्याचार होने पर किस प्रकार विरोध करने के लिए मजबूर होते हैं। 'धरित्री' (1973), साधू मैहर की 'अभिमान', प्रशांत कुमार नन्द की 'शेषो श्रवण', प्रकाशित हुई।

1980 के आस-पास ओड़िया सिनेमा की चिंतन की दिशा में परिवर्तन आया अमिय रंजन पटनायक की 'ममता मांगे मूल' के प्रकाशन के साथ। उनकी हाकिम बाबू को राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। इस दौर की मील का पत्थर कुछ ओड़िया फिल्मों- 'शीत राती' (1982), 'निरब छाड़ा' The Silent Storm (1984), ओड़िसा में प्रचलित बंधुआ मजदूर प्रथा की दर्द भरी कहानी है। 'क्लान्त अपरान्ह' (1987), में ओड़िसा के ग्रामीण इलाके की रोजमर्रा के जीवन को दिखाया गया है। 'अंध दिगन्त' (1989)। 'माया मृग' (1983) और 'धारे आलुओ' 1984 के मुंबई फिल्मोत्सव में स्क्रीनिंग भी हुई थी।

ओड़िया साहित्य और चिंतन, जगन्नाथ को केंद्र कर मुख्यतः पुराण आधारित है। ओड़िसा प्रदेश संस्कृति को प्रधानता देने वाला होने के कारण महाकाव्य के युग से लेकर आज तक के साहित्य में पौराणिक मिथ अपनी व्यापकता में उतारे हैं। इसी कारण से ओड़िया सिनेमा पौराणिक मिथ केन्द्रित भी रहा है। श्री जगन्नाथ जी को केंद्र कर फिल्म बनी 'श्री जगन्नाथ'(1950), श्री श्री महालक्ष्मी पूजा' (1959), 'पुओ मोरो कला ठाकुर', 'असुछी मो कालिया सुना' और 'चक्का आखी सबु देखुछी' जिसने ओड़ियावासी की आस्था के कारण खूब अच्छा बिज़नेस किया।

ओड़िया सिनेमा ने कुछ प्रयोग भी किये। अमिय रंजन पटनायक ने 'राजा-रानी', परदेशी बाबू और 'परीमहल' इन तीनों फिल्मों को ओड़िया, बंगला और बंगलादेशी भाषा में बनाने की परंपरा आरम्भ की थी। उन्होंने 'तुलसी अपा' नाम से बायोपिक बनायी थी जो ओड़िया सिनेमा की पहली बायोपिक थी, जो अंतरराष्ट्रीय उत्सव में काफी सफल रही थी।

1990 में ओड़िसा सरकार के प्रोत्साहन के कारण कुछ और बेहतरीन फिल्मों का निर्माण हुआ। अरुपा बीर किशोर के निर्देशन में बनी 'आदि मीमांसा' (1991) जिसमें अशोक कुमार, नीना गुप्ता ने भूमिका निभाई थी, को राष्ट्रीय एकता के बेहतरीन प्रदर्शन के लिए 'नरगिस दत्त पुरस्कार' प्राप्त हुआ। 'लावण्य-प्रीती' (1993), 'अरण्यका'(1994) और 'शेष दृष्टि' (1997), बजा बिलाप राय चौधरी की 'अरण्य रोदन' (1993) सतकड़ी होता के उपन्यास 'अशांत अरण्य' पर आधारित और 'निर्वाचन'(1995) में भारत की चुनाव प्रक्रिया में भ्रष्टाचार को दिखाया गया है। सुशांत मिश्र की 'बिश्व प्रकाश'(1999) आदि।

नब्बे के दशक तक पहुँचते-पहुँचते उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव-क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत हो गया कि वह कला, साहित्य, राजनीति तथा समाजशास्त्र के विमर्श के केंद्र में आ गया। भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद आदि ने हमारे जीवन में आक्रामक भौतिकवाद, आनंदलिप्सु उपभोक्तावाद तथा सांस्कृतिक विघटन को लोकप्रिय बना दिया। ओड़िसा अपनी क्षेत्रीय संस्कृति-प्रियता के बाबजूद कल्चर से मुक्त नहीं रह पाया।

इसका प्रभाव ओड़िया सिनेमा पर भी दिखाई दिया। 21वीं सदी की प्रारंभ में मनोरंजन सिनेमा अधिक मात्र में आया, जिसमें एक्शन थ्रिलर, कॉमेडी, रोमांस आदि भरपूर मात्रा में था। 'सिंदूर नुहे खेला घर'(2002), 'ए जुगार र कृष्ण सुदामा'(2003), 'समय हाथरे दौड़ी'(2007), 'तो बिना मो कहानी अधा' (2007), 'तुमकू पारूनी त भूलि' (2007), 'तो बिना भल लगे ना'(2008), 'आकाशे की रंग लागिला'(2009), 'बालूंगा टोका'(2011), 'सुना पिला टिके स्कू ढीला'(2012), 'टू जे सेई'(2013), 'सुपर मिछुआ'(2015), 'चीनी'(2016), 'तोर दिने कू मोर दिने'(2016), 'अगस्य'(2016), 'तू मो हीरो'(2017), 'सुन्दरगढ़ र सलमान खान'(2018) आदि ऐसी ही फिल्मों हैं।

मनोरंजन-परक सिनेमा के साथ-साथ समाज को सन्देश देती हुई विचारों में नयापन लिए फिल्मों का भी निर्माण हो रहा है। प्रफुल्ल महंती की 'मागुणि र शगढ़' (2002) गोदावारीश महापात्र की कहानी पर आधारित फिल्म है जिसमें संस्कृति और परम्पराओं के महत्व को दिखलाया गया है और व्यक्ति को अपनी परम्पराओं को नहीं छोड़ना चाहिए और सुभाष दास की 'अ अकारे आ'(2003) में वर्तमान की शिक्षा प्रणाली और आधुनिक शिक्षा में गिरते मूल्यों को दिखाया गया है, ने अपने बेहतरीन काम के लिए राज्य और केंद्र सरकार से पुरस्कार जीते।

हिमांशु खटवा ने 1999 में ओडिशा में आये सुपर साइक्लोन की त्रासदी पर आधारित 'कथान्तर' (2007) बनायी। सुवेन्दु सवाई द्वारा निर्देशित 'बन्दे उत्कल जननी'(2008) कार्य क्षेत्र में राष्ट्रीयता और ईमानदारी का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती फिल्म बनी। यह पहली ओड़िया फिल्म है जिसे डिजिटल UFO सिस्टम के तहत सेटेलाइट के माध्यम से प्रदर्शित किया गया था।

'स्वयंसिद्धा' (2010), जिसमें युवाओं को माओवाद-नक्सलवाद की तरफ झुकते हुए दर्शाया गया है। लेकिन साथ ही समाधान के साथ, कि स्नेह और प्रेम से उन्हें पुनः सुधार जा सकता है एवं अच्छे नागरिक बनाने की प्रेरणा दी जा सकती है। 'मोते बहु करि नेई जा'(2011), इसमें ओड़िसा वासियों का दशकों तक विदेश में रहने पर भी अपनी संस्कृति के प्रति न केवल झुकाव बल्कि प्रेम भी दर्शाया गया है।

वर्तमान की राजनीति पर आधारित फिल्म 'मुख्यमंत्री'(2009) बनी, तो 'मोस्ट वांटेड'(2011) में गुण्डा- समाज की करतूतों का पर्दा फास किया गया है। 'साला बुढा' (2012) में एक बूढ़े व्यक्ति का, समाज के लिए परोपकार की भावना अनेकों प्रतिरोधों के बावजूद बनी रहती है, इसमें दृढ़- इच्छा शक्ति को प्रदर्शित किया गया है, 'गॉड फादर'(2017), में भी एक बुजुर्ग की दृढ़ इच्छा शक्ति को दिखाया गया है।

उत्तर- आधुनिक समय के एकाकीपन के दर्द को झेलते अपने में खोये आदमी को बयां करती 2015 में मनोविश्लेषण को केंद्र कर फिल्म बनी 'अंतरलीन' और 'कैपिटल 1'। 'क्रांति-धारा' (2016), में राजनीति में उच्च पद पर रहते हुए भी घर में पति से सम्मान के लिए स्त्री-संघर्ष को दर्शाया गया है। वहीं हिंदी सिनेमा में भी मनोरंजनपरक फिल्म 'बजरंगी भाईजान'(2015), 'तनु वेड्स मनु रिटर्न्स'(2015), 'डिअर जिन्दगी'(2017), 'टाइगर जिन्दा है'(2017), 'सीक्रेट सुपर स्टार' (2017) के साथ-साथ समाज को सन्देश देती

फिल्मों का निर्माण हुआ है जिनमें कुछ बायोपिक भी हैं - 'भाग मिल्खा भाग'(2013), 'मैरीकॉम' (2014), 'दंगल'(2016), 'बुधिया सिंह-बोर्न टू रन'(2016), 'सुल्तान'(2016), 'एम्. एस धोनी-एन अनटोल्ड स्टोरी' (2016), 'बेबी'(2016), 'हॉलिडे'(2016), 'सचिन ए बिलियन ड्रीम्स'(2017), 'टॉयलेट- एक प्रेम कथा'(2017), 'टोबा टेक सिंह'(2017), 'पैडमैन'(2018), 'मंटो' (2018) आदि।

आज फ़िल्में न सिर्फ भारतीय बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजारवाद को भी ध्यान में रख कर बनायी जा रही है। नायक का वर्गीय चरित्र भी बदल चुका है। हालाँकि इस सदी की शुरुआत से अब तक विभिन्न समस्याओं और विषयों पर फ़िल्में बनायी जा रही है, परन्तु इन सबमें बाजारवाद कहीं न कहीं हावी है। हिंदी सिनेमा अपने विषय चयन और तकनीकी विकास को बहुत आगे ले जा चुका है जिसकी ओड़िया सिनेमा में काफी कमी रही है। ओड़िया सिनेमा को आवश्यक है कि यथार्थवादी सोच को विकसित करते हुए सामाजिक सोदेश्यता को ध्यान में रखते हुए प्रेरणास्पद फिल्मों का भी निर्माण करे, मात्र मनोरंजन विस्फोट न रह कर वैश्विक अवधारणाओं को लेकर भी काम करने की मांग पर ध्यान दे। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि वर्तमान का ओड़िया सिनेमा प्रगति के मार्ग पर है। हिंदी और ओड़िया सिनेमा दोनों ही संवेदनात्मक व सामाजिक विषयों जैसे स्त्री, प्रवासी चिंतन, उदारीकरण आदि को लेकर भी काफी काम कर रहे हैं। ओड़िया सिनेमा मुक्त आकाश में पंख पसार रहा है यद्यपि हिंदी सिनेमा की गति के समक्ष इसकी गति कुछ धीमी अवश्य है।